भारत में विज्ञान अनुसंधान और बे-डोले कानून

पी. बालाराम

सामान्य दिनों में अकादमिक संस्थानों के दो मुख्य उद्देश्य होते थे - अध्यापन और अनुसंधान। विश्वविद्यालयों का लक्ष्य ज्ञान का प्रसार और नए ज्ञान का सृजन करना होता था। अकादमियों में बुद्धिजीवी अक्सर गूढ़ विषयों पर चिंतन-मनन और उस पर कार्य करते थे। लेकिन स्वतंत्र अनुसंधान संस्थानों के विकास से अनुसंधान और अध्यापन के बीच एक रेखा खिंचती गई जिससे पारंपरिक विश्वविद्यालयों के अकादमिक माहौल में तेज़ी से गिरावट आई।

हाल के दिनों में औद्योगिक साझेदारी की बढ़ती चर्चाओं के साथ अकादमिक परिसरों में एक तीसरे पहलू का पदार्पण हुआ है। पश्चिम के देशों में विश्वविद्यालय-सरकार-उद्योग की तिकड़ी को 'ट्रिपल हेलिक्स' की संज्ञा दी जाती है। यह शब्द जी. एन. रामचंद्रन द्वारा प्रस्तुत कोलेजन की संरचना के मॉडल से सम्बंधित है जिसमें तीन तंतु आपस में गुंथे हुए होते हैं। कोलेजन एक बहुत ही दमदार प्रोटीन होता है जो जीवों में संयोजी तंतुओं के ताने-बाने का निर्माण करता है। नए संदर्भ में 'ट्रिपल हेलिक्स' शब्द ऐसी तस्वीर पेश करता है जिसमें अकादमिक समुदाय, सरकार और उद्योग आपस में बहुत ही गहराई से गुंथे हुए और तीन तरफा संपर्क में हैं।

क्या इन तीनों के बीच यह जुड़ाव वाकई में मज़बूत और लाभप्रद है? इस सवाल पर पश्चिम में, खासकर अमेरिका में काफी बहस हो चुकी है। आज से ठीक 30 साल पहले अमेरिका में बे-डोले कानून पारित किया गया था। इस कानून ने विश्वविद्यालयों के लिए उन आविष्कारों से व्यावसायिक लाभ उठाने के दरवाज़े खोल दिए जो विश्वविद्यालय में हुए हों। बे-डोले कानून के पारित होने के करीब 25 साल बाद *साइंस* के प्रधान संपादक डोनाल्ड केनेडी ने उसकी समीक्षा करते हुए अपने संपादकीय में लिखाः 'अमेरिकी सरकार ने विश्वविद्यालयों या अन्य गैर सरकारी संस्थानों में सरकारी धन से हुए अनुसंधान पर बौद्धिक संपत्ति का अधिकार छोड़ दिया। इसके पक्ष में यह तर्क दिया गयाः चूंकि सरकारी धन से किए गए अनुसंधान के लिए बहुत कम पेटेंट्स जारी किए जा रहे थे, इसलिए ज़रूरी है कि वैज्ञानिकों और उनके संस्थानों को अपने आविष्कारों का पेटेंट करवाने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाए ताकि वे नई टेक्नॉलॉजी को उपयोगी उत्पादों के रूप में विकसित कर सकें।' इसे लेकर अमेरिका में अनुभव मिले-जुले रहे हैं। विश्वविद्यालयों का 'कार्पोरेटाइज़ेशन' मिश्रित वरदान रहा है। इससे जुड़े मुद्दों - प्रोफेसर-उद्यमी की नवीन भूमिका, विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के बदले लाभ प्राप्त करने की उभरती लालसा, विश्वविद्यालयों के आसपास औद्योगिक पार्क्स जहां छात्र अपने गुरु के उद्यमों में रोज़गार पा सकें, और विश्वविद्यालयों में वेंचर फंड्स की स्थापना - पर काफी चर्चाएं हुई हैं। बे-डोले कानून के प्रभाव का केनेडी ने बहुत ही गहरा विश्लेषण किया हैः "असंगति और दोगलापन हमेशा हावी रहे हैं। हम टेक्नॉलॉजी का हस्तांतरण तो चाहते हैं, लेकिन उनसे नाराज़ होते हैं जो सरकार समर्थित कार्य को आगे बढ़ाते हैं और निवेश पर लाभ हासिल करते हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान (एनआईएच) एक तरफ तो लाभ न कमाने वाले प्रकाशकों से कीमत कम करने का आग्रह करता है, मगर दवा निर्माताओं को दवाएं सस्ते में बेचने पर मजबूर नहीं करता जबकि वे दवाइयां संस्थान द्वारा किए गए शोध से तैयार हुई हैं। कुछ वैज्ञानिक सामग्री के हस्तांतरण पर नियंत्रण को लेकर नाराज़ रहते हैं, तो कुछ का कहना होता है कि ऐसा करना ज़रूरी है। भले ही आलोचक विश्वविद्यालयों के 'कार्पोरेटाइज़ेशन' पर हाय-तौबा मचाते हों, लेकिन अकादमिक संस्थानों और कंपनियों के बीच सहयोग लगातार फल-फूल रहा है।" केनेडी बे-डोले कानून का अपना आकलन इन शब्दों में पूरा करते हैं, "इस कानून की कोई समयावधि नहीं है, करीब चौथाई सदी बीतने के बाद ज़रूरी है कि इसकी बदौलत हुए अविष्कारों को तौला जाए और यह देखा जाए कि विश्वविद्यालयों,

उनकी फैकल्टियों और विज्ञान के सार्वजनिक ट्रस्टों ने इनकी क्या कीमत अदा की है।" पिछले दो दशकों में अमेरिकी विश्वविद्यालयों के बदलते चेहरे से कई विश्लेषक चिंतित हैं और केनेडी ज़ोर देकर पूछते हैं:"क्या पेटेंटों और लाइसेंसों के बढ़ते झुरमुट की वजह से, आइज़ेनबर्ग और हेलेर के शब्दों में, ऐसे ज्ञान का सृजन हुआ है जो 'गैर-साझा' है और जिससे वैज्ञानिकों के बीच संवाद भी खत्म हो गया है?'

टेक्नॉलॉजी क्रांति में विश्वविद्यालयों की प्रेरक भूमिका की मिसाल के तौर पर अक्सर जेनेन्टेक व सैन फ्रांसिस्को स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय और स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय व गूगल का नाम लिया जाता है। हाल ही में हुआ एक दिलचस्प सर्वे विश्वविद्यालयों के पेटेंट का स्कोर कॉर्ड प्रस्तुत करता है। वर्ष 2009 में विश्वविद्यालयों में हुए आविष्कारों में मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी (एमआईटी) सबसे आगे है। इसके बाद कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय और कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी (कैल्टेक) का नंबर आता है। इस स्कोर कॉर्ड में शीर्ष 124 संस्थानों को अमेरिकी पेटेंटों की संख्या के आधार पर रैंक दी गई है। गैर-अमेरिकी संस्थानों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है, हालांकि अब उनकी संख्या में इज़ाफा हो रहा है। मज़ेदार तथ्य यह है कि पिछले साल अमेरिका में जितने भी यूटिलिटी पेटेंट जारी किए गए, उनमें विश्वविद्यालयों का हिस्सा महज़ दो फीसदी रहा है।

सवाल यह है कि 25 साल पहले पारित किए गए एक अमेरिकी कानून में हमारी दिलचस्पी क्यों होनी चाहिए? दरअसल, हाल ही में भारतीय संसद में 'सरकारी अनुदान प्राप्त बौद्धिक संपत्ति संरक्षण एवं उपयोगिता विधेयक2008' पेश किया गया है और इसे जल्दी ही विचार के लिए लाया जा सकता है। इस विधेयक का मसौदा तैयार करते समय सरकार का मकसद बिलकुल साफ था। यह विधेयक बे-डोले कानून का भारतीय संस्करण बनाने के उद्देश्य से लाया गया है और इसका मकसद विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में आविष्कारों की प्रक्रिया को बढ़ावा देना और बौद्धिक संपत्ति अधिकारों का संरक्षण करना है। चूंकि भारतीय अकादमिक संस्थानों में लगभग सभी अनुसंधान कार्यों के लिए सरकारी अनुदान मिलता है, ऐसे में इस कदम से बौद्धिक संपत्ति अधिकारों में सरकार को उसके हिस्से से वंचित करने और कई संस्थानों में मौजूदा व्यवस्था को कानूनी स्वीकृति मिलने में आसानी हो जाएगी। इससे अकादमिक संस्थानों और वैज्ञानिक अनुसंधानों में मदद करने वाले विभिन्न सरकारी विभागों के नज़रिए में भिन्नता को भी दूर किया जा सकेगा।

विधेयकों का मसौदा तैयार करना बहुत ही कठिन काम होता है। मसौदे में वकीलों (और नौकरशाहों) को अनेकार्थी शब्दों का इस्तेमाल करना अच्छा लगता है, जिससे भविष्य में मुकदमेबाज़ी और बहस के रास्ते खुल जाते हैं। चूंकि यह विधेयक वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य और उन संस्थानों के बारे में है, जहां भावी आविष्कार जन्म लेंगे, इसलिए इस विधेयक के प्रत्येक खंड के प्रभावों की सावधानीपूर्वक जांच-परख ज़रूरी है। संसदीय प्रक्रिया में इस विधान को लेकर जल्दबाज़ी करने की कोई ज़रूरत नहीं है। इस पर एक सरसरी निगाह डालने से ही स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय वैज्ञानिक समुदाय को यह ज़रूर सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कानून को लेकर कोई भी शक या शुबहा नहीं रहे और जहां भी ज़रूरी हो, संशोधन किए जाएं।

विधेयक के 'उद्देश्य एवं हेतु का वक्तव्य' में स्पष्ट कहा गया है: 'प्रस्तावित कानून से खासकर विश्वविद्यालयों और अकादमिक एवं अनुसंधान संस्थानों में बौद्धिक संपत्ति अधिकारों को लेकर जागरूकता बढ़ेगी। इससे विद्यार्थियों, शिक्षकों और वैज्ञानिकों को आविष्कार के प्रति प्रोत्साहित करने में विश्वविद्यालयों और अकादमिक एवं अनुसंधान संस्थानों की जवाबदेही भी बढ़ेगी। इस तरह के आविष्कारों से रॉयल्टी या आय अर्जित करके इन संस्थानों के लिए वित्तीय संसाधन जुटाए जा सकते हैं। बौद्धिक संपत्ति अधिकारों से अर्जित आय से विश्वविद्यालय और अकादमिक एवं अनुसंधान संस्थान आत्मनिर्भर बन सकेंगे और इस तरह सरकारी अनुदान पर उनकी निर्भरता काफी कम हो सकेगी।'

वकीलों द्वारा तैयार किया गया कोई भी दस्तावेज़ जब

मेरी मेज़ पर आता है तो मैं (और कई अन्य लोग) उसे लेकर आशंकित रहता हूं। उसकी भाषा बहुत ही अस्पष्ट व भयावह होती है जिससे उसके कई अर्थ निकलने की संभावना बन जाती है। चूंकि प्रत्येक विवादास्पद मसले का समाधान मुकदमेबाज़ी के ज़रिए ही होता है और विभिन्न स्तरों पर न्यायिक व्याख्याएं अलग-अलग हो सकती हैं, इसलिए इसका फायदा वकीलों को मिलना लाज़मी है। मेरा ध्यान कानून के बिंदु 17 की ओर गया है जो कहता है: 'इस कानून के प्रावधान स्कॉलरशिप, फेलोशिप और मुख्यतया शैक्षणिक उद्देश्य से दिए गए सरकारी अनुदान के फलस्वरूप उत्पन्न बौद्धिक संपत्ति पर लागू नहीं होंगे।' हमारे संस्थानों में अनुसंधान कार्य मुख्यतया पीएच.डी. छात्रों द्वारा किया जाता है और इनमें से अधिकांश को सरकारी स्कॉलरशिप मिली होती है। ये फेलोशिप शैक्षणिक उद्देश्य से दी जाती हैं और अनुसंधान कार्य के लिए विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करती हैं। प्रयोगशालाओं में अग्रिम पंक्ति में भी ये ही विद्यार्थी होते हैं। ऐसे में जो भी बौद्धिक संपत्ति सृजित होगी, उस पर इन लोगों की छाप होगी। ऐसे में क्या नया कानून इन सभी कार्यों को उसके दायरे से बाहर कर देगा?

इसके अलावा कुछ और भी प्रावधान हैं जिनसे यह साफ नहीं है कि उनका उद्देश्य आम लोगों के भले के लिए आविष्कारों को सुगम बनाना है या फिर सरकारी संस्थानों में किए गए अनुसंधान कार्यों की उपयोगिता और उनके प्रसार की प्रक्रिया में बाधा खड़ी करना है। कई संस्थान पहले से ही उद्यमशीलता को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रम लागू कर चुके हैं और उनमें अंदरूनी बौद्धिक संपत्ति प्रबंधन प्रकोष्ठ भी कार्यरत हैं। विज्ञान सम्बंधी कार्यों को अनुदान देने वाले कुछ सरकारी विभाग तो यह तथ्य स्वीकार कर भी चुके हैं कि बौद्धिक संपत्ति पर अधिकार उसी संस्थान का है जहां अनुसंधान हुआ है। मगर रोचक बात है कि अनुदान देने वाले सभी सरकारी विभाग इस नज़रिए को नहीं मानते हैं।

क्या इस कानून से हमारे संस्थानों में आविष्कारों और मौलिक अनुसंधान कार्य के लिए माहौल में सुधार होगा? क्या वित्तीय प्रोत्साहन रचनात्मकता को बढ़ावा देने वाला प्रमुख कारक है?

नए बौद्धिक संपत्ति अधिकार कानून के बारे में सोचते हुए मेरा ध्यान एल. लीडेसडॉर्फ एवं एम. मेयेर द्वारा किए गए एक अध्ययन (*साइंटोमेट्रिक्स*, 2010) की ओर गया जिसका शीर्षक था: 'विश्वविद्यालयीन पेटेंटों में गिरावट और बे-डोले प्रभाव की समाप्ति'। लेखकों का मानना है कि बे-डोले कानून की वजह से 1981 से 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध तक विश्वविद्यालयीन पेटेंटों पर बेहद नाटकीय असर पड़ा था, लेकिन 2000 के बाद से विश्वविद्यालयीन पेटेंटों में कमी आने के साथ ही कानून का असर घटने लगा। इससे पहले किए गए एक अध्ययन से पता चला था कि ऑस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालयों ने ऐसे कानून के बगैर भी उसी तरह की सफलता हासिल की थी। इन लेखकों के अनुसार विश्वविद्यालयों की अकादमिक रैंकिंग की नई प्रणाली लागू होते ही विश्वविद्यालयीन पेटेंट के लिए संस्थागत प्रोत्साहन नदारद हो गया। रैंकिंग की इस नई प्रणाली में पेटेंट और आविष्कारों को वज़न नहीं दिया जाता है। वैश्विक स्तर पर पेटेंट के लिए आवेदन करने और उसे बरकरार रखने में काफी पैसा लगता है। लायसेंस फीस और रॉयल्टी से होने वाली आय पेटेंट पर खर्च होने वाली राशि से काफी ज़्यादा होनी चाहिए, लेकिन भारतीय संस्थानों में यह स्थिति अब तक नहीं आ सकी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नए कानून की वजह से नई समस्याएं उठेंगी जिनका समाधान ज़रूरी होगा, खासकर यदि पेटेंट-संख्या को संस्थागत उपलब्धि का पैमाना मान लिया जाए।

मैं स्वीकार करता हूं कि नए कानून को समझना मेरे लिए काफी मुश्किल है जो निश्चित रूप से कानून सम्बंधी मेरी नासमझी का परिचायक है। यहां मैं चार्ल्स डिकेन्स के उपन्यास 'ऑलिवर ट्विस्ट' के उस अविस्मरणीय वृतांत को याद करने के लोभ से नहीं बच पा रहा हूं, जब ऑलिवर का मूल उजागर होता है। ऑलिवर को उसकी मां (जो बरसों पहले मर चुकी है) द्वारा उपहार में दिए गए गहनों की खोज करते हुए मि. ब्राउनलो साबित कर देते हैं कि दरअसल श्रीमति बंबल ने वे गहने एक साहूकार को बेच दिए थे। ब्राउनलो कहते हैं कि कानून की नज़र में उनके

पति श्री बंबल ज़्यादा दोषी हैं क्योंकि "कानून मानता है कि आपकी पत्नी आपकी हिदायत से काम करती है।" श्री बंबल का यह जवाब अविस्मरणीय है, "यदि कानून ऐसा मानता है, तो कानून गधा है, बेवकूफ है। यदि कानून की नज़र यही है तो कानून अविवाहित है, और मैं चाहता हूं कि काश, अनुभव कानून की आंखें खोल दे - अनुभव।" इसमें कोई संदेह नहीं है कि नए कानून का मिजाज़ भी अनुभवों से नरम हो जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***